RNI 26281/74 रजि.नं. पी.बी./जे.एल.-011/2018-20

ओ३म्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 45, अंक : 19 एक प्रति 2 : रुपये
कुल पृष्ठ : 8
रविवार 2 अगस्त, 2020
विक्रमी सम्वत् 2077, सृष्टि सम्वत् 1960853121
दयानन्दाब्द : 196 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–45, अंक : 19, 30 जुलाई-2 अगस्त 2020 तदनुसार 18 श्रावण, सम्वत् 2077 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

देव के अनुकूल सब का प्रयाण

लेo–स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

यस्य प्रयाणमन्वन्यऽइद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा।
यः पार्थिवानि विममे सऽएतशो रजाꣳसि देवः सविता महित्वना।।

–यजुः० ११।६

शब्दार्थ–यस्य = जिस **देवस्य** = देव के **प्रयाणम्+अनु** = प्रयाण के पीछे तथा **महिमानम्+अनु** = महिमा के कारण **अन्ये** = दूसरे **देवाः** = देव **ओजसा** = हठात् **ययुः+इत्** = चलते ही हैं। **यः** = जो **पार्थिवानि** = पार्थिव तथा अन्य **रजांसि** = लोकों को **वि+ममे** = विशेषरूप से बनाता है, **सः** = वह **सविता** = सर्वोत्पादक **देवः** = भगवान् **महित्वना** = महत्त्व के कारण **एतशः** = सबका गतिदाता है।

व्याख्या–इस मन्त्र में आत्मानुसन्धान का विशेष विधान है। **'देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा' (नि०)** = देने के कारण, प्रकाशमय होने के कारण अथवा प्रकाशक होने के कारण पदार्थ 'देव' होता है। आत्मा को वेदों में अनेक स्थानों में ज्योति कहा है। **यथा–'ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कम्' [ऋ० ६।९।५]** = दर्शन के लिए सुखकारी अविनाशी ज्योति [शरीर में] है, अतः निरुक्तनय से आत्मा देव है। मन और इन्द्रियों को यजुर्वेद [३४।१] में ज्योति कहा है–**'ज्योतिषां ज्योतिरेकम्'** = जो [मन] ज्योतियों में प्रधान ज्योति है, अतः मन तथा इन्द्रियाँ भी देव हैं। इस दृष्टि से मन्त्र का भाव हुआ–''आत्मदेव के प्रयाण के पीछे सभी देव चले जाते हैं, मानो इसने सब पार्थिव लोकों को माप रखा है और वही इनका गतिदाता है।''

जीवित तथा मृत शरीर के देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है। आत्मा के निकल जाने पर आँख, नाक, कान आदि सभी इन्द्रियाँ चली जाती हैं। अब आँख देखने का कार्य नहीं करती। कान सुनते नहीं, नाक सूँघती नहीं, रसना स्वाद नहीं लेती। स्पर्शन अब सर्दी-गर्मी का पता नहीं देती।

वास्तव में बात यह है कि ये सब हथियार हैं। आत्मा के बिना ये बेकार हैं। आत्मा ही इनका प्रयोक्ता है। रानी मक्खी के चल देने पर जैसे अन्य मधु मक्खियाँ उसके पीछे चल देती हैं, वैसे ही आत्मा के पीछे ये सब चल देते हैं।

संसार में कोई भी प्राणी मरना नहीं चाहता, किन्तु मरते सभी हैं। क्यों? प्रतीत होता है, कोई ऐसा बली है, जो बलात् आत्मा को देह से निकाल देता है। उस महादेव के प्रयाण=प्रेरणा के अनुकूल अन्य सूर्य-चन्द्र आदि चलते हैं।

भगवान् सभी लोक-लोकान्तरों का निर्माता है। केवल संसार बनाकर ही उसने छोड़ नहीं दिया, वरन् उसने ही इसमें गति डाली है। इस सबका कारण उसका महाबल है। सारांश यह कि यह सारा संसार भगवान् के विधान के अनुसार चल रहा है। वही इसका विधाता तथा गतिदाता है।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने।
शं यद्गवे न शाकिने।।

–पू० २.१.३.१

भावार्थ–सब मनुष्यों को चाहिए कि बाह्य आभ्यन्तर सब शत्रु विनाशक परमेश्वर की प्रसन्नता के लिए उसके गुणों का बखान मिल-जुलकर करें। जैसे पृथिवी सबका आधार होने से सबको सुख दे रही हैं। ऐसे ही परमात्मा देव सबका आधार और सबके सुखदायक है, उसकी सदा प्रेम से भक्ति करनी चाहिए।

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्त्रवन्तु नः।।

–पू० १.१२३.१३

भावार्थ–सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् परमात्मा की दिव्य शक्तियाँ, हमें मनोवाञ्छित सुख की दात्री होवें। वे ही प्रभु की अचिन्त्य दिव्य शक्तियाँ, हमें तृप्तिदायक होवें और हम पर सुख की वर्षा करें। इस संसार में हमें सदा सुखी रखकर मुक्तिधाम में सर्व दुःखनिवृत्तिपूर्वक परमानन्द की प्राप्ति करावें। ऐसी दयामय जगत्पति परमात्मा से नम्रतापूर्वक हमारी प्रार्थना है कि परम पिता जी ऐसी प्रार्थना को स्वीकार कर हमें सदा सुखी बनावें।

पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम्।
पुण्यांश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति।।

–उ० ५.२.८

भावार्थ–वेद की पवित्र ऋचाएँ, स्वाध्यायशील धार्मिक पुरुष को पवित्र करती और शरीर को नीरोग रखकर अनेक सुन्दर भोज्य पदार्थों को प्राप्त कराती हैं और मुक्तिधाम तक पहुँचाती हैं, क्योंकि वेदवाणी परमात्मा की दिव्यवाणी है उसका श्रवण, मनन और निदिध्यासन करने से परमात्मा का ज्ञान और सब दुःखों का भञ्जन करने वाली परमात्मा की परा-भक्ति प्राप्त होती है। इसी से अधिकारी मुमुक्षु मोक्ष धाम को प्राप्त होता है।

येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा।
तेन सहस्त्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः।।

–उ० ५.२.८

भावार्थ–जिस प्रणव जप और वेदों के पवित्र मन्त्रों के स्वाध्याय रूप पवित्र कर्म से, प्रभु के उपासक, स्वाध्यायशील विद्वान् महात्मा लोग, अपनी आत्मा को सदा पवित्र करते हैं, उस अनन्त धारण शक्तियों से सम्पन्न, ईश्वर-प्रणिधान और वेद स्वाध्याय रूप कर्म से, सारे संसार को पवित्र करने वाली वेदों की ऋचाएँ हमको पवित्र करें।

पुरुषार्थ करो-निर्धनता भगाओः अथर्ववेद

ले.-शिवनारायण उपाध्याय, दादाबाडी कोटा (राज.)

भारत वर्ष एक ऐसा देश है जिसमें जगत् में सबसे अधिक धन वाले लोग निवास करते है परन्तु यहां निर्धन लोगों की संख्या सबसे अधिक है। 25 प्रतिशत से अधिक लोग तो गरीबी की रेखा के भी नीचे रहकर अपना जीवन गुजार रहे हैं। माना जाता है कि आज भी देश की एक तिहाई जनसंख्या को दोनों समय भोजन भी प्राप्त नहीं हो पाता है, एक समय रूखा-सूखा भोजन करके वे अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनके पास न तो रहने के लिए ठीक सा मकान है और न पहनने को पूरे वस्त्र। शिक्षा की दृष्टि से भी वे पिछड़े हुए हैं, आज भी भारत में साक्षर लोगों की संख्या 68 प्रतिशत के लगभग ही है। वास्तव में निर्धनता एक शाप के समान है और इससे मुक्त होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके महत्व को ध्यान में रखकर ही कहा गया है। पहला सुख निरोगी काया, दूजा सुख घर में माया। वास्तव में माया के अभाव में काया भी निरोगी नहीं रह सकती है। माया के अभाव में समाज में भी मान प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हो सकती है। धन के महत्व को ध्यान में रखकर भर्तृहरि कहते हैं-

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान गुणज्ञः।

स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणा कांचनमाश्रयन्ति।

अथर्ववेद में निर्धनता पर विचार किया गया है। निर्धनता को अभिशाप माना गया है और उस पर विजय पाने के लिए ज्ञान और पुरूषार्थ को साधन बनाने को कहा गया है।

निःसालां धृष्णुं धिषणमेक-वाद्यां जिघत्स्वम्।

सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः।।

अथर्व.2.14.1

पदार्थ-(निःसालाम्) बिना घर वाली (धृष्णुम्) भयानक रूप वाली (एक वाद्याम्) दीनता का एक वचन बोलने वाली (धिषणम्) उत्तम वाणी को (जिघत्स्वम्) खा लेने वाली (चण्डस्य) क्रोध की (सर्वाः) इन सब (नप्त्यः=नप्त्रीः) सन्तानों (सदान्वाः) सदा चिल्लाने वाली दानवों, दुष्कर्मियों के साथ रहने वाली (निर्धनता की पीड़ाओं) को (नाशयामः) हम मिटा देवें।

भावार्थ-निर्धनता के कारण मनुष्य की घर में और बाहर समाज में बड़ी दयनीय स्थिति बन जाती है। घर में वह इसलिए रहना नहीं चाहता कि इससे जीवन-यापन हेतु आवश्यक सामग्री का प्रबन्ध करने को कहा जाता है। पढ़ने वाले बालक अपने लिए शिक्षा सामग्री की मांग करते हैं। विद्यालय जाने के लिए आवश्यक वस्त्र उपलब्ध कराने को कहते हैं। वह उनकी मांग पूरी करने में अपने को असमर्थ पाता है तो उन पर क्रोध करता है व्यर्थ मारपीट करता है बाजार में जाने से उसे डर लगता है क्योंकि वहां जिन व्यापारियों से उधार सामान लिया था वे उसे मांगते है। निर्धनता के कारण उसकी वाणी में दीनता आ जाती है और वह मतिभ्रष्ट हो जाता है।

उसे इस कष्ट से कठिन परिश्रम तथा ज्ञान ही छुटकारा दिला सकता है।

निर्वो गोष्ठादजामसि निरक्षान्निरूपानसात्।

निर्वो मगुन्द्या दुहितरो गृहेभ्यश्चातयामहे।।

अथर्व. 2.14.2

पदार्थ-(वः) तुमको (गोष्ठात्) अपनी गोष्ठ से (निर+अजामसि) हम निकाल देते हैं। (अक्षात्) व्यवहार से (निर्) निकाले (उपानसात्) अन्न गृह अथवा धन की गाड़ी से (निर्) निकाल देते हैं। (मगुन्द्याः) हे ज्ञान की मिथ्या करने वाली (निर्धनता) की (दुहितरः) पुत्रियों। (वः) तुमको (गृहेभ्यः) अपने घरों से (निर्) निकाल कर (चातयामहे) हम नाश करते हैं।

भावार्थ-मनुष्य धन उपार्जन और व्यय करने में ऐसा प्रबन्ध करे कि पठन पाठन, गौ आदि पशुओं, व्यापार और अन्न आदि में हानि न हो किन्तु सब पदार्थों के यथावत् संग्रह से सदा सुख की वृद्धि होती रहे। धनोपार्जन के तीन साधन मुख्य है-कृषि, पशुपालन और व्यापार।

कृषि से धन प्राप्त करने के विषय में अथर्ववेद कहता है-

इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः।

वृष्टे शापं नदीरिवेह स्फातिं समावहान्।। अथर्व. 3.24.3

उदुत्सं शतऽधारं सहस्त्रधार-मक्षितम्।

एवास्मा धान्यां सहस्त्रधार-मक्षितम्।।

अथर्व. 3.24.4

पदार्थ-(इमाः) यह (याः) जो (मानवीः) मानुषी (पञ्च) पञ्चभूत से सम्बन्ध वाली (कृष्टयः) प्रजाएं (पञ्च प्रदिशः) पांच फैली हुई दिशाओं में है, वे प्रजाएं (शापम्) मलिनता हटाकर (इह) यहां पर (स्फातिम्) बढ़ती को (समावहान्) यथावत् लावें और (नदीः इव नद्यः इव) जैसे नदियां (वृष्टे) बरसने पर मलिनता हटाकर (शतधारम्) सैंकड़ों धारा वाले और (सहस्त्रधारम्) सहस्त्रों विधि से धारण करने वाले (अक्षित्म्) अक्षय (उत्सम्) सींचने के साधन को (उत्) निकालती हैं (एव) ऐसे ही (अस्माकम्) हमारा (इदम्) यह (धान्यम्) धान्य (सहस्त्रधारम्) सहस्त्रों प्रकार से धारण करने वाला और (अक्षितम्) अक्षय होवे।

शतहस्त समाहर सहस्त्र हस्त सं किर।

कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह।। अथर्व. 3.24.5

भावार्थ-मनुष्य सैंकड़ों तथा सहस्त्रों प्रकार से कर्म कुशल होकर और सहस्त्रों कार्य कुशल व्यक्तियों से मिल कर धन धान्य एकत्रित करे और उत्तम कर्मों में व्यय करके आगा पीछा सोचकर सदैव उन्नति करता रहे।

परिवार में सब मिलकर जितना भी धनार्जन करें, उसका तीन भाग बचाकर भविष्य के लिए रखे और सात भाग ही व्यय करे।

तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणां चतस्रो गृहपत्न्याः।

तासां या स्फातिमत्तमातया त्वाभि भृशामसि।।

अथर्व. 3.24.6

भावार्थ-सब कुटुम्बी लोग जो धन धान्य कमावें उसमें से तीन भाग उत्तम अधिकांश अनदेखे विपत्ति समय के लिए प्रधान पुरूष को सौंपें और शेष के सात भाग करके तीन भाग विद्या वृद्धि और राज प्रबन्ध आदि और चार भाग सामान्य निर्वाह खान पान वस्त्रादि में व्यय करें।

उपोहश्च समूहश्चक्षत्तारी ते प्रजापते।

ताविहा वहतां स्फातिं बहुं भूतानि मक्षितम्।।

अथर्व. 3.24.7

पदार्थ-(प्रजापते) हे प्रजापालक गृहस्थ। (उपोहः) योग प्राप्ति (च) और (समूहः) संग्रह दोनों (च) निश्चय करके (ते) तेरे (क्षतारौ) हानि से बचाने वाले हैं। (तौ) वे दोनों (इह) यहां पर (स्फातिम्) बढ़ती और (बहुम्) बहुत (अक्षितम्) अचूक (भूमानम्) अधिकाई (आ वह ताम्) लावें।

भावार्थ-गृहस्थ लोग पुरूषार्थ करके विद्या, धन, धान्य आदि जीवन सामग्री की प्राप्ति, रक्षा और वृद्धि करके सुख भोगें। यदि व्यापार करना चाहें तो वेद कहता है-

इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुरएता नो अस्तु।

नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदामस्तु मह्यम्।।

अथर्व. 3.15.1

पदार्थ-(अहम्) मैं (इन्द्रम्) बड़े ऐश्वर्य वाले (वणिजम्) व्यापारी को (चोदयामि) आगे बढ़ाता हूँ (सः) वह (नः) हम में (एतु) आवे और (नः) हमारा (पुरएता) अगुआ (अस्तु) होवे। (अरातिम्) शत्रु (परि पन्थिनम्) डाकू और (मृगम्) जंगली पशु को (नुदन्) रौंदता हुआ (सः) वह (ईशानः) समर्थ पुरूष (मह्यम्) मुझे (धनदाः) धन देने वाला (अस्तु) होवे।

भावार्थ-मनुष्य व्यापार कुशल व्यक्ति को अपना मुखिया मानकर वाणिज्य और मार्ग की ऊँच नीच को समझ कर धन लगाने से लाभ लें।

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः।

तन्मे भूयो भवतु कनीयोऽग्ने सातघ्नो देवान् हविषा निषेध।।

अथर्व. 3.15.5

भावार्थ-नवशिक्षित व्यापारी बड़े-बड़े व्यापारियों से लाभ-हानि

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

अपने-अपने घरों में बैठकर स्वाध्याय और चिन्तन करें

वैदिक संस्कृति में स्वाध्याय को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। शास्त्रों में मनुष्य जीवन को चार भागों में बांटा गया है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। स्वाध्याय को हमारी संस्कृति में इतना महत्व दिया गया है कि यह प्रत्येक वर्ण और आश्रम के लिए अनिवार्य और आवश्यक है। आश्रमों में प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य आश्रम केवल गुरूओं के सान्निध्य में रहकर स्वाध्याय के लिए है। जब विद्या पूरी हो जाती है तो समावर्तन के समय आचार्य स्नातक को शिक्षा देता है कि-**स्वाध्यायान्मा प्रमदः। स्वाध्याय प्रवचनाभ्याम् न प्रमदितव्यम्** अर्थात् जिसका स्पष्ट प्रयोजन यही है कि आगे चलकर गृहस्थाश्रम में भी स्वाध्याय करते रहो और उसमें कभी प्रमाद न करो। गृहस्थ के पश्चात वानप्रस्थी का भी प्रधान कर्म स्वाध्याय और तप ही रह जाता है। संन्यासी का समय भी परम तत्त्व चिन्तन और उपदेश के अंगीभूत स्वाध्याय में ही व्यतीत होता है।

सन्यासी के लिए आज्ञा है कि-**संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकन्न संन्यसेत्।** अर्थात् सन्यासी सभी कर्मों को त्याग दे परन्तु वेद का त्याग न करे। हमारे ऋषियों-मुनियों के द्वारा स्वाध्याय को इतना महत्त्व देने का उद्देश्य यही है कि जिस प्रकार शरीर की स्थिति और उन्नति मन से होती है उसी प्रकार मनुष्य की आत्मिक उन्नति भी स्वाध्याय के द्वारा होती है। आत्मिक उन्नति के बिना मनुष्य जीवन के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। जिस मनुष्य की केवल शारीरिक उन्नति हुई है वह मनुष्य आचरण में पशु के समान होता है। स्वाध्याय के द्वारा मनुष्य का व्यक्तित्व निखर कर सामने आता है।

भारतीय संस्कृति में श्रावणी पर्व को विशेष महत्व दिया गया है। यह पर्व स्वाध्याय के साथ जुड़ा हुआ है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज के तीसरे नियम में लिखा है कि- वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। इस परम धर्म का पालन करने के लिए हमें स्वाध्याय की आवश्यकता पड़ती है। बिना स्वाध्याय के हम वेद को पढ़ने-पढ़ाने और सुनने-सुनाने के अधिकारी नहीं बन सकते। स्वाध्याय के द्वारा ही हमारे अन्दर वेदों को समझने की योग्यता आती है। श्रावणी का पर्व ज्ञानार्जन का पर्व है। प्राचीन काल में अध्येता इस पर्व पर प्रचुर ज्ञानार्जन के लिए अपने आपको तैयार करते थे क्योंकि ज्ञानार्जन की कोई सीमा नहीं होती है। सतत् और शाश्वत अध्ययन ही जीवन की गरिमा है। अतः श्रावणी के पावन पर्व से ही आर्य जगत् का वेद प्रचार सप्ताह आरम्भ होता है जो भाद्र कृष्ण की अष्टमी तिथि तक चलता है।

श्रावणी आर्यों के प्रसिद्ध पर्वों में एक महान् पर्व है। यह पर्व वैदिक पर्व है और इस पर्व का सीधा सम्बन्ध वेद के अध्ययन और अध्यापन से है। इसी आधार को लेकर आर्य समाजों में वेद सप्ताह का आयोजन करके लोगों में वेदों के स्वाध्याय के प्रति प्रेरणा उत्पन्न की जाती है।। वेद के अध्ययन के मार्ग को महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने प्रशस्त किया है। महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित वेद प्रचारक आर्य समाज का कर्त्तव्य है कि वह वेद प्रचार के कार्य को आगे बढ़ाए। स्वाध्याय मनुष्य जीवन का अंग होना चाहिए। स्वाध्याय में प्रमाद का हमारे शास्त्रों में निषेध है। स्वाध्याय का ज्ञान के परिवर्धन में बहुत बड़ा महत्व है। शतपथ ब्राह्मण में स्वाध्याय की प्रशंसा करते हुए लिखा गया है कि स्वाध्याय करने वाला सुख की नींद सोता है, अपना परम चिकित्सक होता है, उसमें इन्द्रियों का संयम और एकाग्रता आती है और प्रज्ञा की अभिवृद्धि होती है। श्रावणी पर्व के साथ नए यज्ञोपवीत धारण करने और पुराने के छोड़ने की प्रथा भी जुड़ी हुई है। गुरूकुलों में इसी दिन नए ब्रह्मचारियों का उपनयन संस्कार किया जाता है। इसके साथ ही श्रावणी नक्षत्र से युक्त इस पूर्णिमा को रक्षा बन्धन के रूप में भी मनाया जाता है। यह प्रथा कब से शुरू हुई इसका कोई निश्चित समय तो मालूम नहीं होता परन्तु इसकी भावना अच्छी है। रक्षा बन्धन अर्थात् रक्षा के लिए बन्धन। बहनें भाईयों की कलाई पर रक्षा का बन्धन बांध कर उनसे आशा करती हैं कि वह मुसीबत के समय में उनकी रक्षा करें। इस पवित्र संकल्प के साथ अगर इस पर्व को मनाया जाए तो कोई हानि नहीं है।

आर्य बन्धुओ! आप सभी जानते हैं कि इस समय कोरोना महामारी का प्रकोप फैला हुआ है। इस महामारी के कारण आर्य समाजों में सत्संग नहीं हो रहे हैं और ऐसे समय में वेद प्रचार का आयोजन करना भी सम्भव नहीं है। आर्य समाजों में प्रतिवर्ष इन दिनों में जो वेद प्रचार सप्ताह के आयोजन किये जाते थे, वर्तमान की विकट परिस्थितियों के कारण उस प्रकार के आयोजन करना सम्भव नहीं है। इसलिए इस समय में हम केवल अपने-अपने घरों में बैठकर अपने परिवार के साथ स्वाध्याय कर सकते हैं। स्वाध्याय ही मानव को महामानव बनाता है। स्वाध्याय करने से ही मनुष्य को नई-नई प्रेरणाएं मिलती है। इसलिए कोरोना महामारी के इस वातावरण में हम सभी अपने घरों में बैठकर इस महामारी के प्रकोप से बचते हुए अच्छे-अच्छे ग्रन्थों का स्वाध्याय करें। अपने बच्चों को ऋषि-मुनियों की परम्पराओं से जोड़ने का प्रयास करें। उन्हें भारतीय संस्कृति के गौरव और महत्व को समझाएं। आज हर व्यक्ति के पास समय है। स्कूलों में छुट्टियां होने के कारण बच्चे भी सारा दिन घर में अपने माता-पिता, दादा-दादी के साथ रहते हैं। इसलिए दिन में सुबह या शाम को कोई ऐसा समय नियत करें जिसमें परिवार के सभी सदस्य बैठकर सामूहिक रूप से संध्या करें, गायत्री महामन्त्र का जाप करें, अच्छे ग्रन्थों का स्वाध्याय करें, वेद के एक मन्त्र का प्रतिदिन स्वाध्याय और चिन्तन करें। जूम एप्प के माध्यम से भी ऑनलाईन संगोष्ठियां आयोजित की जा रही हैं जिनमें अच्छे-अच्छे विद्वानों के प्रवचन कराए जाते हैं। उन्हें भी सुनने का प्रयास करें।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित सभी आर्य समाजों से निवेदन है कि वे इन दिनों में अपनी-अपनी आर्य समाजों से जुड़े लोगों को स्वाध्याय के लिए प्रेरित करें। अपनी-अपनी आर्य समाजों के सदस्यों का समूह बनाकर सोशल मीडिया के माध्यम से उन्हें वैदिक विचारधारा से अवगत कराने का प्रयास करें। वर्तमान में ऋषि ऋण से उऋण होने का यही सर्वोत्तम उपाय है। इस महामारी से हमें स्वयं भी सुरक्षित रहना है और अपने परिवार को भी सुरक्षित रखना है। इसके लिए हम सरकार द्वारा दिए गये दिशा-निर्देशों का पालन करें। भीड़-भाड़ वाले स्थानों पर न जाएं। इसलिए इस वर्ष हमें वेद प्रचार के कार्य को अपने-अपने घरों में बैठकर ही करना है। अपने परिवारों को पूर्ण रूप से वैदिक सिद्धान्तों के साथ जोड़ना है। वेद का ज्ञान सूर्य के प्रकाश के समान है। जिस प्रकार सूर्य की किरणों से अन्धकार दूर होता है उसी प्रकार वेद रूपी सूर्य के ज्ञान की किरणों से अज्ञान रूपी अन्धकार, कुरीतियों तथा बुराईयों का नाश होता है। इसलिए सभी आर्य समाजें सोशल मीडिया के माध्यम से लोगों को आर्य समाज के साथ जोड़ने का कार्य करें जिससे सरकार के आदेशों की अवहेलना न हो और हम भी सुरक्षित रहें।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

अर्जुन विषाद : एक दृष्टि

ले.-डॉ. प्रतिभा संस्कृत विभाग जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

श्रीमद्भगवद्गीता ऐसा अनुपमेय सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थ है जिसकी प्रखर ज्ञान रश्मियों ने न केवल सन्त-महात्माओं, भक्तिवादियों, मोक्षार्थियों के तमः पूरित मानस को आलोकित किया, संसार के कर्मयोगियों, विचारक-चिन्तकों को ही चिन्तनदृष्टि दी बल्कि राष्ट्रहित हंसी खुशी बलिदान होने वाले राष्ट्रयुवकों को भी अदम्य साहस से आपूरित भी किया। वस्तुतः भगवद्गीता मानवजाति के लिए अमूल्य निधि है, यह वह शास्त्र है जो मानव जीवन यात्रा के लिए अक्षयपाथेय बनकर मानवसमाज की समस्त समस्याओं को सुलझाते हुए उसके सम्पूर्ण जीवन को सत्यं शिवं सुन्दरम्' बना देता है।

निःसन्देह गीता का वास्तविक माहात्म्य मोहग्रस्त अर्जुन को प्रदत्त श्रीकृष्ण का उपदेश ही है, पर इसमें जिसे निमित्त बनाया गया और जिन परिस्थितियों या जिस सन्दर्भ में इस उपदेश की अभिव्यक्ति हुई, उसका महत्त्व भी कम नहीं है। गीता का विश्वप्रसिद्ध निष्काम कर्मयोग तथा आत्मवाद के सोपान पर आरूढ़ होने के लिए सर्वप्रथम अर्जुनविषादरूपी भूमि पर भी दृढ़ता से पाँव स्थापित करने की आवश्यकता है।

महाभारत के युद्ध को रोकने के अनेक प्रयास हुए किन्तु दुराग्रही दुर्योधन एक ही बात पर दृढ़ रहा-

यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विध्येदग्रेणकेशव।

तावदप्यपरित्याज्यं भूमेन पाण्डवान् प्रति।। म. उद्यो. 127/25

अर्थात् हे केशव! इस समय मुझ महाबाहु दुर्योधन के जीते जी पाण्डवों को भूमि का उतना अंश भी नहीं दिया जा सकता जितना कि एक बारीक सूई की नोंक से छिद सकता है।

दुर्योधन की युद्ध समर्थक ऐसी घोषणाओं तथा पराकाष्ठा तक पहुँचे हुए उसके अत्याचारों व अपमान से आहत पाण्डवों ने माता कुन्ती की आज्ञा तथा श्रीकृष्ण की प्रेरणा से धर्म समझकर युद्ध करने का निश्चय कर लिया।

अर्जुन निश्चितरूप से क्षत्रियों के प्रतिनिधि के रूप में वर्णित हैं और क्षत्रिय का सर्वप्रमुख धर्म है-आततायियों से जन साधारण की सुरक्षा करना। वेद में भी कहा गया-

योऽस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनाः।

निन्दाद्यो स्मान् धिप्साच्च सर्व तं भस्मसा कुरु।। यजु. 11/80

हे क्षत्रिय! जो हमसे शत्रु द्वेष करे, निन्दा करें, दम्भ दिखावे, उसे तू भस्मीभूत कर।

मनुस्मृतिकार ने भी कहा-

आततायिनमायान्तं हन्यादेवा-विचारयन्।

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।। 8/350,51

अपना अनिष्ट करने वाले आततायी को बिना विचारे ही मार देना चाहिए। आततायी को मारने से मारने वाले को कुछ भी दोष नहीं होता।

वसिष्ठस्मृति में आततायी के छः लक्षण बताये गये हैं-

अग्निदो गर्दश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः।

क्षेत्रवारापहर्ता च षडेते च आततायिनः।। 3/19

आग लगाने वाला, विष देने वाला, हाथ में शस्त्र लेकर मारने को उद्यत धन हरण करने वाला, जमीन छीनने वाला और स्त्री का हरण करने वाला-ये छहों ही आततायी हैं। महाभारत के शान्तिपर्व में भी स्पष्ट कहा गया है कि-

एकं हत्वा यदि कुले शिष्टानां स्यादनामयम्।

कुल हत्वा च राष्ट्रं च न यत् वृत्तोपघातकम्।।म.भा.भा.

यदि एक पुरूष को मारकर कुटुम्ब के शेष व्यक्तियों का कष्ट दूर हो जाए और एक कुटुम्ब का नाश कर देने से समस्त राष्ट्र में सुख शान्ति छा जाए तो वैसा करना सदाचार है, धर्म का नाशक नहीं।

वास्तव में धर्म की व्यवस्था लोकयात्रा के निर्वाह के लिए होती है। सर्वथा हिंसा न की जाए, दुष्ट की हिंसा की जाए या नहीं यह प्रश्न उपस्थित होने पर जिससे धर्म की रक्षा, हो वही कार्य श्रेष्ठ मानना चाहिए। तद्यथा-

लोकयात्रार्थमेवेह धर्मप्रवचनं कृतम्।

अहिंसा साधुहिंसानिः श्रेयान् धर्मपरिग्रहः।।म.भा.शा.पर्व

इसलिए क्षात्रधर्म को सर्वोपरि मानकर सेना तथा शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित अर्जुन रणक्षेत्र में पहुँच गया। अर्जुन क्षत्रिय अवश्य था किन्तु सबसे पूर्व वह एक मानव था। अतः अर्जुन ने शत्रुपक्ष में ज्यों ही स्वजनों को देखा, उसके मानवीय गुणों ने उस पर आधिपत्य कर उसके क्षात्रधर्म को दुर्बल कर दिया। वस्तुतः अर्जुन का विषाद उसकी दुर्बलता या कायरता नहीं बल्कि उसके मानवोचित स्वाभाविक धर्म थे। श्रीमद्भगवत्गीता जैसे शास्त्रों के एक एक अध्याय एक एक श्लोक और प्रत्येक पद तपः पूर्त ऋषियों के समाधि अवस्था में आविर्भूत अनन्त रहस्यों को अपने अन्दर समेटे हुए हैं। स्वजनों के प्रति उमड़े हुए अर्जुन के स्नेह सम्मान तथा उसके विषाद में प्रत्येक युग के प्रत्येक मानव के लिए दिव्य सन्देश अनुस्यूत है।

आज जब प्रभु प्रदत्त स्फटिक सम निर्मल हृदयरूपी फर्शों पर मानव के स्वार्थ की ऐसी गहरी काई जम गयी है जिसमें आचार्य गुरुजन, माता-पिता, भाई-बन्धु आदि रिश्ते नाते फिसलते चले जा रहे हैं। स्नेह, सम्मान, संवेदना तथा मानवीय गुणों के सेतु जो समाज के घटकों को परस्पर आवद्ध करते थे, उनकी दृढ़ नींव को दम्भ काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष रूपी मूषक खोखले कर ले जा रहे हैं। आए दिन समाचार पत्रों में दिल दहला देने वाली स्वजनों के रक्त बहाने की क्रूर घटनायें राष्ट्र के नैतिक पतन को स्पष्टतः अभिव्यक्ति कर रही हैं। गीता में अर्जुन का विषाद प्रकरण कर्मयोग, आत्मवाद आदि की मात्र भूमिका के रूप में पठनीय नहीं बल्कि आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इसका मनन-चिन्तन निश्चित रूप से आधुनिक मानवीय कठोरता व शून्यता को समाप्त कर पारस्परिक स्नेह, करूणा, सम्मान की रसधारा बहाने में महत् उपयोगी है। युद्ध की दृष्टि से अर्जुन पाण्डव पक्ष का सर्वश्रेष्ठ पात्र तथा प्रतिनिधि तो था ही, दोनों ही पक्षों के क्षात्रधर्म का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक भी था। अन्ततः वह ऐतिहासिक क्षण आ गया जब शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित प्रशिक्षित अर्जुन मनसा वाचा कर्मणा अपने सम्पूर्ण क्षत्रियत्त्व को युद्धाग्नि में अर्पित कर कौरवों के सर्वनाश हेतु सन्नद्ध हो गया तथा यत्नपूर्वक भगवान श्रीकृष्ण को अपने रथ का सारथि बना कर सेना सहित रणक्षेत्र में पहुँच गया। युद्ध से पूर्व अर्जुन ने अपने सारथि से कहा-

'सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत'।

योत्स्यामानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।

धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेयुर्द्धे प्रियचिकीर्षवः।।

'मेरा रथ दोनों सेनाओं के मध्य ले चलिए।' अर्जुन युद्ध करने से पूर्व अपने उन सभी शत्रुओं पर एक दृष्टि डालना चाहता था, जिन्हें उसने जीतना था या जिनका विनाश करना था। विशेषरूप से वह उन राजाओं के विषय में यह जानना चाहता था जो दुर्बुद्धि दुर्योधन के हितचिन्तक बनकर उसके विरोध में यहाँ पहुँचे हैं वस्तुतः दो भाईयों या एक ही कुल में परस्पर युद्ध होने पर कौन पक्ष में है और कौन विपक्ष में है? यह जानना अप्रसाङ्गिक नहीं है, किन्तु दोनों सेनाओं के मध्य पहुँच कर जैसे ही अर्जुन की दृष्टि शत्रुपक्ष के लोगों पर पड़ती है, समूचा वास्तविक तथ्य उनकी समझ में आ जाता है। उसके अनुसार यह वह युद्ध है जिनमें एक ही जाति, एक ही राष्ट्र, एक ही वंश के नहीं, बल्कि एक ही कुल और एक ही घर के लोग एक दूसरे के शत्रु बनकर आमने सामने खड़े हैं।

(आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहः)

अत्रापश्यस्थितान् पार्थः पितृनाथ पिता महान्।

आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्सखींस्तथा।

श्वशुरानसुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि।।

अर्जुन ने कहा-'मुझे अपने ही गुरूजनों, दादा पितामह, ताऊ, चाचों, भाई, मामों, पुत्र, पौत्र, मित्र, ससुर अपने प्रियजनों का विनाश करना है? ये सब ही तो मेरे जीवन हेतु और विषय हैं, ये सब ही नहीं रहेंगे तो मैं जीवित रहकर क्या करूँगा?

गुरून् हत्वा हि महाभावान्

श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।

हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव

भुञ्जीय भोगान्रूधिर-प्रदिग्धान।।

क्योंकि महानुभाव गुरूजनों को न मारकर इस लोक में भिक्षा के अन्न भी खा लेना मैं श्रेयस्कर समझता हूँ क्योंकि गुरूजनों को मारकर तो इसी लोक में 'रूधिरप्रदिग्धान्' रूधिर से सने हुए अर्थ और कामरूप भोगों को ही तो भोगूँगा।

अर्जुन ने युद्ध न करने के पक्ष में अन्य युक्तियाँ भी दी। उसने अतिविषण्ण मानस होकर कृष्ण से कहा-हे कृष्ण! मुझे राज्य सुख भोग कुछ भी नहीं चाहिए। स्वजनों के वध से पृथिवी क्या, त्रिलोकी का भी राज्य मुझे अभीष्ट नहीं है। ये कौरव अन्धे हैं, इन्हें अपना पाप नहीं दिखाई देता, पर जिसकी आँख है उसे तो सच्चाई दृष्टिगोचर होती है। युद्ध भी किसलिए? कुलधर्म की रक्षा के लिए, जातिधर्म तथा राष्ट्रधर्म की रक्षा के लिए? पर इन्हीं धर्मों का ही तो इस गृहयुद्ध से नाश होगा। महाराज! मुझसे अब कथमपि युद्ध नहीं होगा। मेरा कल्याण तो इसमें ही है कि धृतराष्ट्र के पुत्र मुझ शस्त्रहीन को युद्ध में शस्त्रों से मार डाले' यह कहते हुए अर्जुन गाण्डीव धनुष तथा कभी रिक्त न होने वाले तरकश को नीचे रखकर रथ के पिछले भाग में बैठ गया। विषाद की चरम सीमा पर पहुँचे हुए अर्जुन को कृष्ण ने जो उपदेश दिया, वह मात्र अर्जुन के लिए ही नहीं, जन जन के

(शेष पृष्ठ 7 पर)

पुण्य के आवरण में पाखण्ड : गीता की सामाजिक दृष्टि

ले.-डॉ. जितेन्द्र कुमार सह-आचार्य, संस्कृत विभाग राजकीय महाविद्यालय बयाना, भरतपुर (राज.)

(गतांक से आगे)

इस प्रकार कार्य से जिनकी सात्त्विकादि निष्ठाओं का निर्णय किया गया है उन (स्वाभाविक श्रद्धा वाले) हजारों मनुष्यों में से कोई एक ही शास्त्र-विधि का त्याग होने पर देव-पूजादि परायण, सात्त्विक निष्ठायुक्त होता है। अधिकांश लोग तो राजसी और तामसी निष्ठा वाले ही होते हैं। कैसे? वह बताते हैं-

जो मनुष्य, शास्त्र में जिसका विधान नहीं है ऐसा अशास्त्र विहित और घोर अर्थात् अन्य प्राणियों को तथा अपने शरीर को भी पीड़ा पहुँचाने वाला तप दम्भ एवं अहंकार इन दोनों से युक्त होकर तथा कामना और आसक्ति जनित बल से युक्त होकर, वे अविवेकी मनुष्य, शरीर में स्थित इन्द्रियादि करणों के रूप में परिणत भूत समुदाय को और शरीर के भीतर अन्तरात्मा रूप से स्थित, उनके कर्म और बुद्धि के साक्षी, मुझे ईश्वर को भी कृश (तंग) करते हुए-मेरी आज्ञा को न मानना ही मुझे कृश करना है, इस प्रकार मुझे कृश करते हुए घोर तप करते हैं, उनको तू आसुरी निश्चय वाला समझ। जिनका असुरों का सा निश्चय हो, वे आसुरी निश्चय वाले कहलाते हैं। उनका संगत्याग करने के लिये तू उनको जान।।

अब आगे के श्लोकों की प्रस्तावना स्वरूप आचार्य शंकर कहते हैं-

रसयुक्त और स्निग्ध आदि भोजनों में अपनी रुचि की अधिकता रूप लक्षण से अपना सात्त्विकत्व, राजसत्व और तामसत्व जानकर, राजस और तामस चिन्हों वाले आहार का त्याग तथा सात्त्विक चिन्ह युक्त आहार को ग्रहण करने के लिये यहाँ रस स्निग्ध आदि (वाक्यों द्वारा वर्णित) तीन वर्गों में विभक्त हुए आहार में क्रम से सात्त्विक, राजस और तामस पुरुषों की (पृथक्-पृथक्) रुचि दिखलाई जाती है। वैसे ही सात्त्विकादि गुणों के भेद से यज्ञादि के भेदों का प्रतिपादन भी यहाँ पर इसीलिये किया जाता है कि राजस और तामस यज्ञादि को जानकर किसी प्रकार लोग उनका त्याग कर दें और सात्त्विक यज्ञादि का अनुष्ठान किया करें।

भोजन करने वाले सभी मनुष्यों को तीन प्रकार के आहार प्रिय-रुचिकर होते हैं। वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी (तीन-तीन प्रकार के होते हैं) उन आहारादि का यह आगे कहा जाने वाला भेद सुना।।

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्यता, सुख और प्रीति-इन सबको बढ़ाने वाले तथा रस्य-रसयुक्त, स्निग्ध-चिकने, स्थिर-शरीर में बहुत समय तक (सार रूप से) रहने वाले और हृद्य-हृदय को प्रिय लगने वाले ऐसे आहार (भोजन करने के पदार्थ) सात्त्विक पुरुष को प्रिय-इष्ट होते हैं।

अति कड़वे, अति खट्टे, अति लवणयुक्त, अति उष्ण, अति तीक्ष्ण, अति रूक्ष और अति दाहकारक, एवं दु:ख चिन्ता और रोगों को उत्पन्न करने वाले अर्थात् जो दु:ख, शोक और रोगों को उत्पन्न करते हों, ऐसे आहार राजस पुरुष को प्रिय होते हैं।

अधपका, गतरस-रसरहित, पूति-दुर्गन्धयुक्त और बासी अर्थात् जिसको पके हुए एक रात बीत गई हो, ऐसा भोजन तामसी मनुष्यों को प्रिय होता है। यहाँ 'यातायाम' का अर्थ अधपका किया गया है, क्योंकि निर्वीर्य (सारहीन भोजन) को 'गतरस' शब्द से कहा गया है।

अब तीन प्रकार के यज्ञ बतलाये गये हैं।

फल की इच्छा न करने वाले पुरुषों द्वारा, शास्त्र-विधि से नियत किये हुए जिस यज्ञ का अनुष्ठान किया जाता है तथा "यज्ञ करना ही अर्थात् यज्ञ के स्वरूप का सम्पादन करना ही कर्त्तव्य है।" इस प्रकार मन का समाधान करके अर्थात् "इससे मुझे कोई पुरुषार्थ सिद्ध नहीं करना है" ऐसा निश्चय करके जो यज्ञ किया जाता है वह सात्त्विक कहलाता है।

उक्त श्लोक के पद में "अफलाकांक्षिभि:" का अर्थ फल की प्राप्ति नहीं होगी, ऐसा अर्थ नहीं समझा जाना चाहिए और न ही फल की इच्छा करनी चाहिए, यह अभिप्राय है। अपितु यज्ञ के करने से नौकरी मिल जाएगी, या विवाह हो जायेगा या संतान प्राप्त हो जाएगी अथवा किसी असाध्य रोग की निवृत्ति हो जाएगी या सांसारिक समस्त सुखों की सुलभता हो जाएगी, ऐसा कुछ भी फल रूप में प्राप्त होने वाला नहीं है, प्रत्युत कभी ऐसा सुखद संयोग हो भी जाये तो इस यज्ञ का परिणाम समझकर अत्यन्त प्रसन्न न हों, क्योंकि ऐसा जब प्रत्येक बार नहीं होगा तब यज्ञकर्त्ता पुरुष की यज्ञ में अश्रद्धा होगी, और उलाहना तथा उपालम्भ का भाव जागेगा। इससे अत्यन्त दु:ख और निराशा का भी जन्म होगा। अत: मेरी अल्प समझ से स्वाभाविक रूप में यज्ञ के नियमित और निरन्तर करने से यज्ञ का फल तो प्राप्त होगा ही, परन्तु वह लौकिक और अलौकिक दोनों रूपों में कब और कैसे प्राप्त होगा? यह कहना अत्यन्त दुष्कर है। क्योंकि फल की इच्छा करने में व्यक्ति स्वतन्त्र है, परन्तु फल इच्छा के अनुसार हर समय प्राप्त नहीं हो पाता। परिणाम पराधीन होने के कारण, दूसरे के हाथों में रहने के कारण अथवा ईश्वर के विधान में होने से फल प्राप्ति में परतन्त्रता रहती ही है। व्यक्ति का सहज स्वभाव है कि अपने किये पुरूषार्थ अथवा धर्म-कर्म का परिणाम की दृष्टि से वह अधिकता में ही सोचता और मानता है एवं दूसरों के कर्म को फल के रूप में उतना नहीं देख पाता। अत: तटस्थ एवं समान रूप से सबके साथ पक्षपात करने वाला तथा न्याय-प्रियता और दयालुता के साथ ईश्वर के अतिरिक्त सन्तुलित फल देने में और कोई समर्थ नहीं हो सकता है।

अनेक स्थलों पर जो यज्ञादि कर्म के फल कहे गये हैं, वे सभी श्रेष्ठ कर्मों में प्रवृत्ति बनाये रखने के उद्देश्य से ही कहे गये प्रतीत होते हैं। हम अभिलषित फल प्राप्ति पर यज्ञादि कर्मों से सम्बन्ध जोड़ देते हैं और अप्राप्ति पर अथवा अल्पप्राप्ति पर परेशान हो जाते हैं और इस हताशा में सत्कर्म को भी उलाहना देने लगते हैं जबकि ऐसी स्थिति होने पर विधि में कोई कमी रह गई है, इसको स्वीकार करके पुन: पुरुषार्थ में संलग्न हो जाना चाहिये।

मनुष्य के लिये उसके नैसर्गिक, जन्मजात आजीवन रहने वाले स्वभाव को ध्यान में रखकर ही फल की इच्छा न करने की बात शास्त्र में कही गई है। इससे व्यक्ति कर्म करते हुए फलासक्ति के कारण शीघ्रता तथा तीव्रता और शार्टकट एवं कुटिल रास्ता नहीं अपनायेगा या उस पथ का पथिक होने से अपने को बचायेगा। शास्त्र में जो "अफलाकांक्षिभि:" कहा गया है इसमें 'अ' निषेध का सूचक है, वह भी ईषदर्थ=अल्पार्थ में हो सकता है। क्योंकि नञ् के छ: अर्थों में एक अर्थ अल्पार्थ भी है। यहाँ पर वह सही घट भी रहा है। कर्म के अनुपात में फल की इच्छा स्वाभाविक रूप में मनुष्य से अधिक हो जाती है। उसको नियन्त्रित और संतुलित करने के उद्देश्य से अथवा कर्मानुसार ठीक-ठीक आकलन करते हुए फल की इच्छा करेगा, तब उतना या उससे अधिक प्राप्त होने पर कष्ट नहीं होगा, यह सम्भावना बहुत प्रबल दिखायी देती है।

इसके पीछे मूल उद्देश्य गलत मार्ग के अनुसरण से बचाना और फल प्राप्ति पर अधिकार भाव की सम्पन्नता का परिहार करना एवं ईश्वर के प्रति कृतज्ञता पूर्ण मनोवृत्तियों को बनाये रखना ही परिलक्षित होता है। इसलिये आचार्य संकर उक्त श्लोक की व्याख्या में लिखते हैं कि "यज्ञ के स्वरूप का सम्पादन करना ही कर्त्तव्य है। इस प्रकार मन का समाधान करके अर्थात्-इससे मुझे कोई पुरुषार्थ सिद्ध नहीं करना है" ऐसी व्याख्या करके सुस्पष्ट कर दिया है।

अब राजसी और तामसी यज्ञ की पहचान अगले दो श्लोकों में बताते हैं।

हे भरत कुल में श्रेष्ठ अर्जुन! जो यज्ञ फल के उद्देश्य से और पाखण्ड करने के लिये किया जाता है, उस यज्ञ को तू राजसी जान।

जो यज्ञ शास्त्र-विधि से रहित, शास्त्रोक्त प्रकार से विपरीत और असृष्टान्न होता है अर्थात् जिस यज्ञ में ब्राह्मणों को अन्न नहीं दिया जाता तथा जो मन्त्रहीन-मन्त्र, स्वर और वर्ण से रहित, एवं बतलायी हुई दक्षिणा और श्रद्धा से भी रहित होता है, उस यज्ञ को (श्रेष्ठ पुरुष) तामसी गुणों से किया हुआ बतलाते हैं।

(क्रमश:)

गुरुडमवाद से बढ़ता पाखण्ड और अन्ध विश्वास

ले.-आचार्य राम सुफल वैदिक प्रवक्ता

महाभारत काल तक इस देश में आर्यों का साम्राज्य रहा। एक ईश्वर उपासना व पूजा पद्धति तथा वैदिक मान्यतायें रही। महाभारत के पश्चात् आर्य (हिन्दू) धीरे-धीरे वैदिक मान्यताओं से दूर होते गये और अनेक मत-पथों सम्प्रदायों ने जन्म लिया। वेद के स्थान पर मनगढ़न्त धर्म ग्रन्थ निर्मित होते गए। परिणाम यह हुआ कि आर्यावर्तीय श्रेष्ठ जन नाना प्रकार के सम्प्रदायों के जंजाल में फंसकर आपस में बंट गये। एक ईश्वर के स्थान पर अनेक ईश्वर, एक उपासना के स्थान पर भिन्न-भिन्न पूजा पद्धतियों को अपनाने लगे। जब धार्मिक मर्यादायें, वैदिक मान्यतायें कमज़ोर पड़ने लगी तो परमात्मा के स्थान पर साधारण मनुष्यों ने अपना स्थान बनाना शुरु कर दिया। जिसका परिणाम आप देख रहे हैं कि प्रतिदिन इस देश में नये-नये गुरुओं का जन्म हो रहा है। इसी गुरुडमवाद के कारण पाखण्ड और अन्धविश्वास बढ़ रहा है।

एक बात यह कही जाती है कि 'गुरु बिन गति नहीं।' इस वाक्य ने लोगों को इतना भ्रमित किया है कि इसी के आधार पर यह सारा पाखण्ड चला हुआ है। इसका भाव लोगों को यह बताया जाता है कि गुरु बना लेने से ही मरने के बाद सद्गति होती है। व्यक्ति चाहे कितना ही पाप करे, गुरु उनका उद्धार कर देता है... आदि आदि। अब आज कौन व्यक्ति ऐसा होगा जो बुरे काम करके उसके फल से बचना नहीं चाहेगा। तथाकथित गुरुओं ने ऐसी ही दुकानें खोल ली हैं। वैदिक सिद्धान्त यह है कि परमात्मा की न्याय व्यवस्था में व्यक्ति को बुरे कर्म के लिये दण्डित होना पड़ता है और अच्छे कार्य के लिये परमात्मा उसे पुरस्कृत करता है। कोई भी गुरु या पैगम्बर इसमें जरा सा भी हेर-फेर नहीं कर सकता है।

गुरु शब्द का अर्थ है-गु+रु अर्थात् गु= अन्धकार, रु= प्रकाश। जो अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाए वही सच्चा गुरु है। भारत वर्ष कभी विश्व गुरु कहलाता था। लाखों वर्षों पूर्व महर्षि मनु महाराज ने मनुस्मृति में लिख दिया है कि-

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशाद् अग्रजन्मनः।

स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षरेन् पृथिव्या सर्वमानवाः।।

अर्थात् सारी पृथ्वी के मानव इस देश के अग्र जन्मना, ब्राह्मणों-विद्वानों के सान्निध्य में बैठकर अपने सद्चरित्र की शिक्षा प्राप्त किया करते थे। बड़े-बड़े राजे महाराजे अपने त्यागी तपस्वी गुरुओं के अंकुश में, उनके निर्देशों पर काम किया करते थे। गुरु भी स्वयं कष्ट सहन करके अपने शिष्यों का भला किया करते थे। आज वर्तमान समय में तथाकथित गुरुओं ने अपने-अपने आश्रम, डेरा व संस्थान बनाकर भक्तों की भीड़ एकत्र करने के साधन बना रखे हैं, जिसका संचालन स्वयं करते हैं और कुछ एक गुरु तो ने अपने जीवित रहते हुये ही अपनी धर्मपत्नी को गुरु माँ या अपने बेटे को संस्थान में विशेष स्थान देते हुए अपने शिष्यों के सामने प्रस्तुत करते हैं और धीरे-धीरे उन्हें अपने आश्रम, डेरा व संस्थान का मुखिया घोषित कर देते हैं। इस प्रकार ये तथाकथित गुरु लोग गुरुडम फैलाकर अपना स्वार्थ पूरा करते हैं। आजकल के गुरुओं ने अपने शिष्यों को मोक्ष तक पहुँचाने की पक्की ज़िम्मेवारी ले रखी है। वे कहते हैं कि चाहे जो मर्जी करो, गुरु की कृपा से सब कुछ माफ हो जाएगा। जबकि श्री कृष्ण भगवान ने गीता में कहा है कि-अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् अर्थात् जो जैसा कर्म शुभ या अशुभ करेगा, उसे वैसा ही फल अवश्य भोगना पड़ेगा। जो स्वयंभू बने मठाधीश हैं, अपनी दुकानदारी चला रहे हैं, अपने भक्तों की हर तरह की सुरक्षा की ज़िम्मेवारी लेते हैं। भक्तों को मोक्ष तक पहुँचाने की गारंटी लेते हैं। किन्तु बड़ा आश्चर्य है कि वे स्वयं अपनी सुरक्षा नहीं कर पाते। आप देख रहे हैं कि आये दिन पाखण्डी गुरुओं के कारनामों की पोल खुल रही है। भक्तों की अपने शिष्यों को मोक्ष तक पहुँचाने की गारंटी देने वाले गुरु सब जेलों में बंद हैं। आप विचार करके सावधानी पूर्वक गुरु धारण करें। इन पाखण्डी गुरुओं के जाल में न फंसे। क्योंकि ये स्वयं भी डुबेंगे और भक्तों को भी डुबायेंगे। जितने भी हमारे पूर्वज हुए हैं वे सब प्राचीन ऋषि-मुनियों की परम्पराओं एवं सत्य-सनातन वेद की शिक्षाओं के अनुसार अपने शिष्यों को चलने की प्रेरणा देते थे। मर्यादा पुरुषोतम श्रीराम, योगेश्वर श्री कृष्ण प्रतिदिन यज्ञ-हवन करते थे। सन्ध्या उपासना करते थे, अपने माता-पिता, गुरुजनों और बड़ों की आज्ञा का पालन करते थे उनका शिष्टाचार एवं सभ्यता युक्त जीवन था। वर्तमान जीवनशैली अस्त-व्यस्त हो गयी है। ये सब केवल और केवल गुरुडमवाद की देन है। इस गुरुडमवाद के कारण लोग पवित्र वेद पथ से विमुख होकर गुरुओं के प्रपंच-जाल में फंसकर आये दिन नये-नये अन्धविश्वास और पाखण्ड का शिकार हो रहे हैं।

काला धागा, तिलक, कण्ठी, भूत-प्रेत, उपरी-पराई, चौराहों पर पानी डालना, प्रसाद चढ़ाना, टोने-टोटके, बिल्ली रास्ता काट गयी तो अपशकुन (अशुभ) हो गया। पीपल में मौली बांधना, कहीं तुलसी में मौली बांधना, मंगलवार को हनुमान जी की पूजा करना, शुक्रवार को संतोषी माता की पूजा करना, शनिवार को शनि देवता की। इस तरह पूजा व उपवास को व्रत का नाम दे दिया गया। हनुमान जी इतने बड़े वेद-शास्त्रों के जानकार विद्वान् महापुरुष थे, उनको बन्दर बना दिया और पूंछ लगा दी। गणेश जी माता-पिता के अनन्य भक्त थे, उनको हाथी की सूंड लगाकर आधा मनुष्य और आधा हाथी का रूप दे दिया गया।

किस दिन किस दिशा में जाना है, किस दिशा में नहीं जाना, जन्म कुण्डली देखकर भविष्य बताना, जिसे महर्षि दयानन्द जी ने शोक पत्र कहा है। किस दिन कब क्या करना क्या न करना आदि मिथ्या धारणाओं में लोग फंस गये। इन पण्डे-पुजारियों के चुंगुल में फंसकर जो वास्तविक कर्तव्य हिन्दुओं (आर्यों) का था। 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' अर्थात् यज्ञ ही संसार का सबसे श्रेष्ठ कर्म है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति को अपने घर में प्रतिदिन करना चाहिए, वह तो छोड़ दिया और अनेक प्रकार की पूजा-पद्धतियों को करने लगे, जो मनुष्य की उन्नति में बाधक है। वर्तमान में पाषाण-जड़मूर्ति पूजा का प्रचलन बहुत तेजी से बढ़ रहा है। जो ऐतिहासिक दृष्टि से राष्ट्र के लिए बहुत घातक सिद्ध हो चुका है। फिर भी पढ़े लिखे लोग भी इस कार्य में लगे हुए हैं। हम सब एक ही ईश्वर की संतानें हैं। परम पिता परमात्मा हम सबका पिता है। वैसे तो परमात्मा के गौणिक नाम असंख्य हैं, परन्तु परम पिता परमात्मा का मुख्य नाम एक है। जिसे ओ३म् कहते हैं। जो आदि सृष्टि से चला आ रहा है। हम सब केवल और केवल एक परमात्मा 'ओ३म्' को आधार मानकर उसी की उपासना करें तो कल्याण सुनिश्चित है। अतः हमें चाहिए कि गुरु धारण करते समय उसके बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करें। वैसे तो सब गुरुओं का गुरु परम पिता परमात्मा है, उसी के सान्निध्य में बैठकर पूर्ण भक्ति करनी चाहिए और जितना सम्भव हो सके पाखण्डी गुरुओं के गुरुडमवाद से बचना चाहिए।

आर्य गर्ल्ज सी.सै.स्कूल बठिंडा का शानदार परीक्षा परिणाम

पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड द्वारा घोषित 12वीं कक्षा के परीक्षा परिणाम में आर्य गर्ल्ज सी.सै.स्कूल बठिंडा की लड़कियों ने आर्ट्स एवं कामर्स ग्रुप में शत प्रतिशत नतीजा हासिल किया। आर्ट्स ग्रुप की छात्रा मुस्कान कौर और प्रियंका ने 93 प्रतिशत अंक लेकर पहला स्थान प्राप्त किया। नेहा रानी 92 प्रतिशत और सिमरनजीत कौर ने 91 प्रतिशत अंक प्राप्त करके द्वितीय और तृतीय स्थान हासिल किया। इसी तरह कामर्स ग्रुप की छात्रा आंचल जिन्दल 94 प्रतिशत अंक प्राप्त कर पहले स्थान पर रही। महविश 91 प्रतिशत अंक प्राप्त करके दूसरे स्थान पर और अंजलि 85 प्रतिशत अंक लेकर तृतीय स्थान पर रही। स्कूल के प्रधान श्री अनिल अग्रवाल, उप प्रधान श्री सुरिन्द्र गर्ग, मैनेजर श्री निहाल चंद सचदेवा, प्रिंसीपल श्रीमती सुषमा मेहता जी व समूह स्टाफ ने सभी बच्चों को बधाई दी। प्रिंसीपल श्रीमती सुषमा मेहता जी ने सभी अध्यापिकाओं और बच्चों द्वारा की गई कड़ी मेहनत की प्रशंसा की और बच्चों के उज्जवल भविष्य की कामना की। **- श्रीमती सुषमा मेहता प्रिंसीपल**

पृष्ठ 2 का शेष-पुरूषार्थ करो-निर्धनता...

की रीतें समझ कर अपने मूल धन को बढ़ाते रहे और कुव्यवहारियों के फन्दे में न पड़ें।

विपत्ति के समय भी मनुष्य को निर्भय होकर धैर्य से काम करना चाहिये।

आ नो भर परिष्ठा अराते मा नो रक्षीर्दक्षिणां नीयमानाम्।

नमो वीर्त्साया असमृद्धये नमो अस्त्वरातये।। अथर्व. 5.7.1

पदार्थ-(अराते) हे अदान शक्ति। (नः) हमें (आ) आकर (भर) पुष्ट कर। (मा परिष्ठाः) अलग मत खड़ी रह (नः) हमारे लिए (नियमानाम्) लाई हुई (दक्षिणाम्) दक्षिणा, दानवा प्रतिष्ठा को (मा रक्षीः) मत रख ले। (वीर्त्सायै) अवृद्धि इच्छा (असमृद्धये) असम्पत्ति अर्थात् (अरातये) अदान शक्ति, निर्धनता को (नमो नमः) बार-बार नमस्कार (अस्तु) होवे।

भावार्थ-जो मनुष्य विपत्ति में निर्भय होकर धैर्य से उपाय करते हैं वे उन्नति करते हैं वा मनुष्यों को निर्धनता का सत्कारपूर्वक सहायक होना चाहिए। मनुष्य को निर्धनता को हटाने के लिए प्रयत्न करना चाहिये।

परोऽयह्यसमृद्धे विते हेनिं नयामसि।

वेद त्वाहं निमीवन्ती नितुदन्ती मराते।। अथर्व. 5.7.2

पदार्थ-(असमृद्धे) हे असमृद्धि। (परः) परे (अप इहि) चली जा। (ते) तेरी (हेतिम्) बरछी को (विनयामसि) हम अलग हटाते हैं। (अराते) हे अदान शक्ति। निर्धनता। (अहम्) मैं (त्वा) तुझको (निमीवन्तीम्) निर्बल करने वाली और (नितुवन्तीम्) भीतर चुभने वाली (वेद) जानता हूँ।

भावार्थ-मनुष्य महादुःखदायिनी निर्धनता को प्रयत्न पूर्वक हटावे। मनुष्य कभी कभी निर्धनता के कारण आलसी होकर उसे और बढ़ाते हैं।

उत नग्ना बोभुवती स्वप्न या सचसे जनम्।

अराते चित्तं वीर्त्सन्त्याकूतिं पुरूषस्यच।। अथर्व. 5.7.8

पदार्थ-हे अदान शक्ति। निर्धनता। तू मनुष्य के चित्त और संकल्प को असिद्ध करती हुई, लज्जित बार बाद होती हुई तू नींद के साथ जन समूह को प्राप्त होती है।

या महती महोन्माना विश्वा आशा व्यानशे।

तस्ये हिरण्यकेश्यै निर्ऋत्या अकंर नमः।। अथर्व. 5.7.9

पदार्थ-(या) जो (महती) बलवती (महोन्माना) बड़े शरीर वाली निर्धनता (विश्वाः) सब (आशाः) दिशाओं में (व्यानशे) व्याप्त हुई है। (तस्यै) उस (हिरण्यकेश्यै) सुवर्ण का प्रकाश करने वाली (निर्ऋत्ये) क्रूर विपत्ति को (नमःअकरम्) मैंने नमस्कार किया है।

भावार्थ-मनुष्य सर्वव्यापिनी निर्धनता से पुरूषार्थ द्वारा उसका नाश करके सुवर्ण आदि धन प्राप्त करते हैं।

पशुपालन भी मनुष्य की निर्धनता को दूर करने में सहायक होते हैं इसलिए अथर्ववेद काण्ड 3 सूक्त 14 में इसका भी वर्णन है।

इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत।

इहै वोत प्रजायध्वं मयि संज्ञा नमस्तु वः।। अथर्व. 3.14.4

पदार्थ-(गावः) हे गौओ। (इह एव) यहां ही (एतन्) आओ। (इहो+उ) यहां ही (शका इव) गृह पत्नी के समान (पुष्यत) पोषण करो (उत) और (इह एव) यहां पर ही (प्रजायध्वम्) बच्चों से बढ़ो (मयि) मुझमें (वः) तुम्हारा (संज्ञानम्) प्रेम (अस्तु) होवे।

अब हम विषय को आगे विस्तार न देकर निर्धनता को कैद करके रखने वाले मंत्र को देकर विषय को विराम दे रहे हैं।

असौ यो अधराद् गृहस्तत्र सन्त्वराय्यः।

तत्र सेदिर्न्युच्यतु सर्वाश्च यातुधान्यः।। अथर्व. 2.14.3

पदार्थ-(असौ) वह (यः) जो (गृहः) घर (अधरात्) नीचे की ओर है (तत्र) वहां ही (अराय्यः) निर्धनता वाली विपत्तियां (सन्तु) रहें (तत्र) वहां पर ही (सेदिः) महामारी आदि क्लेश (नि उच्यतु) नित्य निवास करें (च) और (सर्वाः) सब (यातुधान्य) पीड़ा देने वाली क्रियाएं भी।

पृष्ठ 4 का शेष-अर्जुन विषाद : एक दृष्टि

लिए संजीवनी अमृत बन गया।

यह सत्य है कि पर्याप्त ऊहापोह के पश्चात् अन्त में कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध के लिए सहमत कर लिया, किन्तु युद्ध न करने के पक्ष में अर्जुन ने जो तर्क दिए वे सत्य सिद्ध हुए। पाण्डवों ने विजयश्री का अवश्य वरण किया, राज्य भी हस्तगत किया, किन्तु इस युद्ध में विनाश का जो महाताण्डव हुआ उसमें कई निरापराध जन पण्डित, ज्ञानी, वेदज्ञ, महारथी, सब युद्ध की भीषण ज्वाला में भस्म हो गए। विशाल सैन्यशक्ति नष्ट हुई। धृतराष्ट्र के पूछने पर युधिष्ठिर ने कहा-

दशाननामयुतं सहस्राणि च विंशतिः।

कोटयः षष्ठिश्च षद चैवास्मिन् राजन् युधे हतः।।

अर्थात् हे राजन्! इस युद्ध में 66 करोड़ एक लाख तीस हजार सेना मारी गयी।

गान्धारी अपने पुत्रों के शवों के पास करूणक्रन्दन करती हुई भीम से कहने लगी-

वृद्धस्यास्य शतं
पुत्रान्निर्घ्नस्वमपराजितः।
कस्मान्न शेशयेः किञ्शिेच-द्येनाल्प मदराजितम्।।
सन्तानभावयोस्तात
वृद्धयोर्हतराज्ययोः।
कथमन्धद्वयस्यास्य यष्टिरेका न वर्जिता।।

अर्थात् हे भीम! तुम्हारी यह कैसी विजय है? कि तुमने वृद्ध राजा धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों को मार डाला। इनमें से किसी एक ने यदि थोड़ा अपराध किया था तो उसे तो छोड़ देना चाहिए था। हम वृद्ध दम्पति का राज्य छीना और सन्तानें भी मारी। तुमने हम दो अन्धों की एक भी आधारभूत लकड़ी नहीं छोड़ी।

रानियाँ युधिष्ठिर से पूछ रही थी-

किं नु राज्येन ते कार्य पितृन्भ्रातृ न्पश्यतः

अभिमन्युं च दुर्घर्ष द्रौपदेयांश्च भारत।।

अर्थात् हे युधिष्ठिर! अपने पिता, भ्राता, महापराक्रमी अभिमन्यु और अन्य द्रौपदी पुत्रों के बिना राज्य प्राप्त करने में तुमको कैसा लगेगा?

श्रीकृष्ण ने अर्जुन के समक्ष युद्ध के पक्ष में यह युक्ति प्रस्तुत की थी कि यदि तू युद्ध में मारा गया तो तू मोक्षगामी बनेगा और यदि विजयी हुआ तो पृथ्वी पर राज्य करेगा। इस प्रकार मृत्यु और विजय दोनों में ही तुझे लाभ मिलेगा।

इतिहास साक्षी है कि ये दोनों बातें प्रायः आंशिक ही सत्य सिद्ध हुई। अर्जुन की मृत्यु नहीं हुई, अतः वह मोक्षगामी नहीं बन सका। विजय अवश्य मिली, राज्य भी अधिगत हुआ, पर पाण्डवों की दृष्टि में यह विजय भी पराजय सम ही थी।

युधिष्ठिर का परिताप पठितव्य है-

सौभद्रं द्रौपदेयांश्च घातयित्वा सुतान् प्रियान्।

जयो अयमजयाकारो भगवन् प्रतिभाति मे।। श. पर्व

अर्थात् सुभद्राकुमार अभिमन्यु तथा द्रौपदी के प्रियपुत्रों को मरवाकर मिली हुई वह विजय भी मुझे पराजय सी प्रतीत हो रही है।

आमिषे गृध्यमानानामशुभं वै भानामिव।

आमिषं चैव नो दृष्टिमामिषस्य विवर्जनम्।। शा. पर्व

जैसे मांसलोभी कुत्तों को अशुभ की प्राप्ति होती है, वैसे ही राज्य में आसक्त हुये हम लोगों को भी अनिष्ट प्राप्त हुआ, अतः हमारे लिए मांसतुल्य राज्य की प्राप्ति अभीष्ट नहीं है, अपितु उसका परित्याग ही अभीष्ट है।

न पृथिव्या सकलया न सुवर्णस्य राशिभिः।

न गवाश्वेन सर्वेण ते त्याज्या य इमे हताः।। शा. पर्व

हमारे जिन बन्धुबान्धवों का संहार हुआ है उनका त्याग तो हमें सम्पूर्ण पृथिवी, स्वर्ण राशि और समस्त गाय घोडे पाकर भी नहीं करना चाहिए था।

हताः शूराः कृतं पापं विषयः स्वो विनाशितः।

हत्वा नो विगतो मन्युः शोको मां रून्धयत्ययम्।। शा. पर्व

हमने शूरवीरों को मौत के घाट उतारा, पाप किया और अपने ही राष्ट्र का विनाश किया। शत्रुओं को मारकर हमारा क्रोध तो दूर हुआ, परन्तु बन्धुबान्धवों के मारे जाने का शोक मुझे निरन्तर व्यथित कर रहा है।

वस्तुतः युद्ध से पूर्व युद्ध न करने के पक्ष में अर्जुन ने कृष्ण के समक्ष जो मार्मिक युक्तियाँ प्रस्तुत की थी, उन सब का साकार रूप अब युधिष्ठिर के समक्ष था। वह भी अब गहरे क्षोभ तथा पश्चाताप की ज्वाला में जल रहा था, किन्तु द्रौपदी, भीम, नकुल, व्यासमुनि, श्रीकृष्ण, भीष्मपितामह द्वारा उद्बोधित करने पर इन्द्रप्रस्थ का राजा बनना स्वीकार कर लिया और दीर्घ समय तक उनकी पीढ़ी राज्य करती रही, किन्तु अर्जुन ने जो भविष्यवाणी की थी वह सत्य सिद्ध हुई। महाभारत युद्ध के पश्चात् वेदज्ञ विद्वानों, पण्डितों, धर्मशास्त्र आदि के सच्चे वेत्ताओं के अभाव में धर्म, संस्कृति, जाति, समाज, पुरातन परम्पराओं तथा मानवीय नैतिक मूल्यों का जो ह्रास और पतन हुआ, उसे कोई रोक न पाया।

आर्य कन्या सी.सै.स्कूल बस्ती नौ जालन्धर का शानदार परीक्षा परिणाम

आर्य कन्या सी.सै.स्कूल बस्ती नौ जालन्धर की मेधावी छात्राएं।

पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड द्वारा घोषित किए गए 12वीं कक्षा के आर्ट्स एवं कामर्स की परीक्षा परिणाम में आर्य कन्या सी.सै. स्कूल बस्ती नौ जालन्धर की छात्राओं ने शानदार प्रदर्शन किया। आर्ट्स ग्रुप में अंजलि बग्गा ने 394, बबीता ने 388 और अंशु ने 378 अंक लेकर पहला, दूसरा व तीसरा स्थान प्राप्त किया जबकि कामर्स ग्रुप में पहला स्थान कंचन 382 अंक को मिला। दूसरे स्थान पर आकांक्षा और तीसरे स्थान पर नंदिनी रही। मेधावी छात्राओं को स्कूल की प्रधान मैडम ज्योति शर्मा, मैनेजर सुधीर शर्मा व प्रिंसीपल मीनू सलूजा ने उज्जवल भविष्य की शुभकामनाएं दी। प्रिंसीपल श्रीमती मीनू सलूजा जी ने सभी अध्यापिकाओं और बच्चों द्वारा की गई कड़ी मेहनत की प्रशंसा की।

–प्रिंसीपल

मिल कर राष्ट्र की समृद्धि में लगें

देश समृद्ध होगा तो ही देश के नागरिक समृद्ध होंगे। देश की समृद्धि के लिए केवल सरकारों के प्रयासों से कार्य संपन्न नहीं होता अपितु इसके लिए नागरिकों को भी एकजुट होकर पुरुषार्थ करना होता है। जब नागरिक संगठित हैं, जब नागरिक पुरुषार्थी हैं और यह पुरुषार्थ एकजुट होकर करते हैं तो परिणाम भी उत्तम होते हैं। इस बात पर ही यह मन्त्र इस प्रकार प्रकाश डाल रहा है :-

यस्याचतस्त्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवः।
या बिभर्ति बहुधा प्राणमेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु।।

अथर्ववेद १२.१.४।।–१२१२.४।।

इस मन्त्र में नागरिकों के संगठन पर प्रकाश डाला गया है। मन्त्र की भावना है कि देश की समृद्धि के लिए देश के नागरिकों में संगठन की, ऐक्य की भावना का होना आवश्यक है। जहाँ ऐक्य नहीं है, वहां देश की प्रगति संभव नहीं है अपितु देश के ह्रास की संभावना अधिक है। इस आलोक में आओ हम मन्त्र के भावों को विस्तार से समझें।

विस्तीर्ण दिशाओं में खेती

जिस देश में चारों दिशाएं दूर–दूर तक विस्तीर्ण दिखाई दें। देश की इन खुली दिशाओं में, खुली होते हुए भी कोई स्थान खाली न दिखाई दे, प्रत्येक स्थान पर अनेक प्रकार की वनस्पतियों की खेती होती हो। भूमि का कोई खलिहान ऐसा न हो, जहां वनस्पतियों की हरी–भरी फसलें न लहलहा रही हों, जहाँ फूलों से लदी लताएँ अठखेलियां न कर रही हों और जहाँ फलों से लदे पेड़ अठखेलियां न कर रहे हों। भाव यह है कि देश के प्रत्येक क्षेत्र में अन्नादि से खलिहान भरे हों, लताएँ फूलों व सब्जियों से भरी हों और वृक्ष समय पर फलों से भर जाते हों। ऐसा देश पूर्ण रूप से संपन्न हो जाता है।

नागरिक मिलकर रहें।

देश के सब नागरिक मिलकर रहें। एकता में बहुत शक्ति होती है। जब नागरिक एक हैं तो किसी अन्य देश को इस देश पर आँख तक उठाने का साहस नहीं होता। इसके साथ ही साथ जब नागरिक संगठित हैं और प्रत्येक कार्य संगठित हो कर सामूहिक हित के लिए सामूहिक रूप से करते हैं तो परिणाम भी अत्यंत उत्तम आते हैं। इसलिए नागरिकों का संगठित होना तथा मिलजुल कर कार्य करना प्रत्येक देश की उन्नति के लिए, रक्षा के लिए आवश्यक होता है। अतः देश के नागरिकों को देश की उन्नति के लिए सामूहिक रूप से कार्य करना चाहिये।

मातृभूमि दुग्ध व अन्न से भरण–पोषण करें।

कोई भी माता ऐसी नहीं, जो अपनी संतान का भरण–पोषण न करती हो। वह अपनी संतानों की उन्नति के स्वप्न सदा संजोये रखती है। उसे यदि कुछ भी अभाव दिखाई देता है तो वह उसे दूर करने के लिए अपना सब कुछ लगा देती है। इस प्रकार ही हमारी यह मातृभूमि निरंतर इस चेष्टा में रहती है कि उसके संतानों (नागरिकों) का ठीक प्रकार से भरण–पोषण कर सके। इस मातृभूमि के कारण ही गो आदि पशुओं का पोषण होता है और इन गौ आदि पशुओं से नागरिकों को पोषण के लिए गोदुग्ध मिलता है। हमारी मातृभूमि ने अपने गर्भ से जो अन्नादि पदार्थ पैदा किये हैं, उन सब के सेवन से वह हमारा पोषण करे अर्थात् इस अन्नादि पदार्थों का सेवन कर हम अपने शरीर को पोषित करते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति के उपाय

ऊपर बताया गया है कि मातृभूमि गो–दुग्ध व अन्नादि पदार्थों से अपने देश के नागरिकों का भरण–पोषण करे। इन पंक्तियों का भाव है कि इस मातृभूमि के प्रत्येक नागरिक के पास, उसकी उन्नति के लिए सब मार्ग खुले रहें। यह उन्नति के मार्ग कैसे खुलेंगे? इन मार्गों को खोलने की चाबी भी इस मन्त्र के अनुसार परमपिता परमात्मा ने अपनी संतान के हाथों में ही दे दी है। मन्त्र उपदेश कर रहा है कि हे मातृभूमि के वीर सपूतो! उठो, आगे बढ़ो, पुरुषार्थ करो और संगठित होकर मातृभूमि पर कुदाल चलाओ, हल चलाओ, फावड़ा चलाओ। आप के इस सामूहिक पुरुषार्थ को कलकारखानों में लगावेंगे तो इन कारखानों से निकलने वाले अनेक प्रकार के पदार्थों के उपभोग तथा व्यापार से देश को अत्यधिक धन–संपदा प्राप्त होगी। यह धन संपदा देश को उन्नति के शीर्ष पर ले जाने में सफल होगी। इसलिए देश के प्रत्येक नागरिक को मन्त्र की भावना को न केवल समझना होगा अपितु संगठित होकर इस पर कार्य भी करना होगा। यदि सब नागरिक अपना कर्तव्य समझते हुए कार्य में लगेंगे तो निश्चय ही परिणाम उत्तम होंगे।

–डॉ. अशोक आर्य

वेदवाणी

स्वराज्य के लिए

इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम्।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम्।।

–ऋक्० १।८०।७

ऋषिः–**गोतमो राहूगणः**।। देवता–**इन्द्रः**।। छन्दः–**भुरिग्बृहती**।।

विनय–हे इन्द्र! तू स्वराज्य की साधना में सफल होगा, अवश्य सफल होगा। माया वाले मृग को माया द्वारा ही मारकर अवश्य सफल होगा, क्योंकि तेरा वीर्य, तेरा बल स्वाभाविक है। संसार में एक तू ही है जिसके लिए बल कहीं बाहर से प्रेरित नहीं हुआ है, कहीं अन्यत्र से नहीं आया है। यह तेरे ही अन्दर से निकलता है, तेरा अपना है, तेरा स्व–बल है। स्व–बल से ही स्वराज्य प्राप्त किया जा सकता है। तेरे मुकाबले में जो मायावी मृग है उसके पास स्वबल नहीं है। वह छल–कपट द्वारा तेरे ही बल को तेरे विरुद्ध प्रयुक्त कर रहा है और राज्य कर रहा है, परन्तु ऐसा माया का बल कितनी देर टिक सकता है? वह नहीं जानता कि माया उत्पन्न होते ही अपने साथ विरोधी माया को भी उत्पन्न करती है। माया जन्म के साथ ही अपने विनाश के लिए अभिशापित होती है। ऋण–विद्युत् धन–विद्युत् को पैदा किये बिना उत्पन्न ही नहीं हो सकती। इसलिए हे आत्मन्! तू इन भयङ्कर–से–भयङ्कर भी दीखने वाले माया के बने मृगेन्द्रों से, प्रकृति के पुतलों से, क्यों भयभीत होता है? यह माया (यह प्रकृति) तो स्वयं विनश्वर स्वभाववाली है। अपने में ही विरुद्धता रखने के कारण स्वयं विनष्ट हो जाने वाली है। देख, ये परस्पर विरोधी रज और तम स्वयं लड़ रहे हैं। उनमें धनात्मक होने से यद्यपि रज विजयी हो रहा है, पर वह भी उससे अधिक धनात्मक सत्त्व के मुकाबले में दब जाता है और फिर रज और तम के बिना न रह सकने के कारण वह विजयी सत्त्व भी तेरे सामने से स्वयं भाग जाता है। यह देह घात करने से कभी नष्ट नहीं होता, फिर–फिर पैदा हो जाता है, परन्तु जब तू इस अन्नमय प्रकृति से बने देह को ही ठीक रखकर इसके अन्दर इसकी विरोधिनी प्राणमय, मनोमय आदि प्रकृति की साधना करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है तो यह देह स्वयं सदा के लिए छूट जाता है। यह चञ्चल मन अपनी विरोधी मनन, एकाग्रता का मनन चलाता है तो वह मन एकाग्र हो जाता है, शान्त, चुप होकर मर जाता है। इसी प्रकार तू इन इन अजेय संस्कारों को भी अपने निरुद्ध संस्कारों द्वारा ही जय कर लेता है। एवं, हे इन्द्र! तू देह–से–देह को दग्ध करता है, मन–से–मन को मार लेता है, संस्कारों–से–संस्कारों को नष्ट कर देता है, प्रकृति के पुतलों को प्रकृति के द्वारा ही पिघला देता है, इन माया के मृगों को माया द्वारा ही मार देता है, पर यह काया, माया से इसीलिए मरती है चूँकि इसमें कुछ भी स्व–बल नहीं है, अतः हे इन्द्र! जब तू अपना स्वबल प्रकट करेगा तो निःसन्देह तेरा स्वराज्य हो जाएगा तेरा स्वराज्य स्थापित हो जाएगा।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित। सम्पादक–प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org